

सिरिवालचरिउ : एक दुर्लभ पाण्डुलिपि

उत्तर-मध्यकालीन अपभ्रंश अथवा सन्धिकालीन अपभ्रंश की महाकवि रइधू कृत प्रस्तुत कथात्मक पाण्डुलिपि समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, समुद्री-यात्रा तथा वैदेशिक व्यापार (Foreign Trade) से सम्बन्धित होने के कारण महत्त्वपूर्ण तो है ही, परवर्ती भाषाओं के उद्भव एवं विकास तथा उनके भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से भी वह विशिष्ट-कोटि की रचना है।

उक्त दुर्लभ पाण्डुलिपि **पेरिस (फ्रांस)** के प्राच्य-शास्त्र-भण्डार में सुरक्षित है। वहाँ की **प्रो० डॉ० नलिनी बलवीर** जी के सौजन्य से उसकी फोटोकापी मुझे उपलब्ध हुई थी, अतः इसके अध्ययन एवं मूल्यांकन का सारा श्रेय उनकी संवेदनशीलता, सदाशयता एवं सौमनस्यता की ओर जाता है। तदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

लेखक

प्रो० डॉ० राजाराम जैन

सिरिवालचरिउ उत्तरमध्यकालीन अपभ्रंश अथवा सन्धियुगीन अपभ्रंश की एक महत्त्वपूर्ण रचना है, जो अद्यावधि अप्रकाशित है। उसका मूल उद्देश्य है **सिद्धचक्रवर्त-विधि-विधान** तथा उसके मन्त्र-जाप के चमत्कार का प्रदर्शन। इसीलिए इसका अपरनाम है **सिद्धचक्रमाहप्प** (सिद्धचक्र-माहात्म्य)।

यह रचना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसके रोचक कथानक में वैदेशिक व्यापार (Foreign Trade), तथा उसके उपकरण, पथ-पद्धति (Road System) मध्यकालीन महासार्थवाह तथा उनके कार्य, समुद्री पोतों के उपकरण, समुद्री डाकुओं के आतंक, जल तारिणी-विद्या-सिद्धि तथा वैर-निवारिणी-विद्या-सिद्धि के तात्कालिक प्रभाव, क्रय-विक्रय की वस्तुएँ, समुद्र के मध्यवर्ती विभिन्न द्वीप-समूहों की समृद्धि तथा उनके निवासियों का सामाजिक जीवन, समकालीन आर्थिक जीवन, विभिन्न जातियों के नाम, बहुविवाह-प्रथा, समाज में नारियों की स्थिति, नारियों के लिए प्रदान की जाने वाली विभिन्न शिक्षाएँ, समस्या-पूर्ति द्वारा नारी का बौद्धिक परीक्षण आदि के वर्णन-प्रसंगों के माध्यम से मध्यकालीन भारतीय आर्थिक (Economic) सामाजिक (Social), धार्मिक (Religious), राजनीतिक (Political) एवं भौगोलिक (Geographical) इतिहास-लेखन के लिए भी उसमें प्रचुर मात्रा में सन्दर्भ सामग्री उपलब्ध होती है।

(2)

जैन विद्या के विषयगत साहित्यिक वर्गीकरण की दृष्टि से यह उसके **प्रथमानुयोग-साहित्य** (अर्थात् कथात्मक-साहित्य) का एक रोचक विस्तृत ग्रन्थ है, जिसमें प्राचीन **अंगदेश** की **चम्पापुरी** (वर्तमान भागलपुर, बिहार) के **राजा श्रीपाल** का बहुआयामी संघर्षशील कथानक वर्णित है। इस कथानक को प्रभावक, रोचक एवं सर्वांगीण बनाने की दृष्टि से उसमें कुछ अवांतर-कथाओं का भी संयोजन किया गया है।

राजा श्रीपाल का उक्त कथानक इतना लोकप्रिय था कि इसे लेकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, गुजराती एवं हिन्दी में चरित, काव्य, रासाशैली-काव्य एवं नाटक-शैली में दर्जनों ग्रन्थ लिखे गए।

यह कथानक दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही जैन-परंपराओं में लोकप्रिय रहा, यद्यपि कि उनके कथानकों में कुछ अन्तर है। जिसकी चर्चा आगे की जाएगी।

कथा-स्रोत

प्रस्तुत पाण्डुलिपि-रचना¹ के मूल नायक राजा **श्रीपाल** तथा उसकी पटरानी **मैनासुन्दरी** का आख्यान एक लोक-प्रचलित आख्यान रहा है। हमारा अनुमान है कि संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के जैन आचार्य लेखकों ने उनके (श्रीपाल एवं मैनासुन्दरी के) पृथक्-पृथक् प्रचलित लोकाख्यानों को मिश्रित कर उन्हें एक नया रूप प्रदान किया होगा। आचार्य **जिनसेन** (नौवीं सदी) के महापुराण² में श्रीपाल नामक एक चक्रवर्ती का आख्यान मिलता है, जिससे निम्न तथ्यों को प्रस्तुत सिरिवालचरिउ के लिए ग्रहण किए गए प्रतीत होते हैं

(1) श्रीपाल चक्रवर्ती का एक विद्याधर द्वारा वृद्ध किया जाना। प्रतीत होता है कि यह वृद्धत्व ही परवर्ती-काल में कुष्ठत्व के रूप में परिवर्तित हो गया।

(2) उक्त श्रीपाल ने अपने साहस और बल-पौरुष के द्वारा अगम्य स्थानों की यात्राएँ कर अनेक कन्याओं का वरण किया और उनमें से सुखदेवी को अपनी पटरानी बनाया। यह सुखदेवी ही सम्भवतः श्रीपाल चरितों की परवर्ती मैनासुन्दरी है। क्योंकि दोनों का चरित, साहस, बुद्धि और धैर्य लगभग एक समान है।

आचार्य **हरिषेण** (दसवीं सदी) के बृहत्कथाकोष में भी एक श्रीपाल नामक पात्र की

1. पेरिस (फ्रांस) प्रति के आधार पर इसका अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका प्रतिलिपिकाल वि०सं० 1688 (वर्षे भा०शु० 10) तथा इसकी पृ०सं० 109 x 2 है।
2. जिनसेन कृत महापुराण (बनारस, 1951), भाग 2, 47वाँ पर्व

(3)

कथा आती है¹ जो दक्षिणापथ के पुन्नाट-देश के तलाटवी नामक नगर में निवास करता था। शैशव-काल में ही उसने **श्रीपंचमी** का व्रत ग्रहण किया और दृढ़तापूर्वक उस व्रत का पालन कर उसने सद्गति प्राप्त की।

उपर्युक्त महापुराण और बृहत्कथाकोष की कथाओं के मिश्रण से एक नवीन कथा परवर्ती जैन मनीषियों द्वारा कल्पित की गई है। इस कथा का यह उपलब्ध रूप 15वीं सदी के पूर्व का देखने में नहीं आया। श्वेताम्बर-परम्परा में अष्टान्हिका-व्रत का महत्त्व अत्यधिक प्रचलित है। पर्युषण-पर्व को भी उसमें अष्टान्हिका ही कहा जाता है। अतः यह कल्पना कोई क्लिष्ट-कल्पना भी नहीं है कि श्वेताम्बर-परम्परा में अष्टान्हिका-व्रत में सम्पन्न होने वाले सिद्धचक्रविधान के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए सर्वप्रथम इस कथा के उपलब्ध रूप को इस परम्परा के आचार्यों ने भी गठित किया हो?

15वीं सदी के 'श्रीपाल-कथा' नामक दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं एक प्राकृत में और दूसरा संस्कृत में। प्राकृत-ग्रन्थ के रचयिता बृहद्गच्छीय **बज्रसेन-सूरि** के प्रशिष्य और हेमतिलक-सूरि के शिष्य श्री **रत्नशेखर-सूरि** हैं। इस ग्रन्थ का संकलन वि०सं० 1428 में हुआ है। संकलकों ने स्वयं ही लिखा है²

**सिरिवज्जसेण गणहर पट्टपहु हेमतिलयसूरीणं ।
सीसेहिं रयणसेहरसूरिहिं इमाहु संकलिया ।।
चउदस अट्टारवीसे लिहिया ।**

इससे स्पष्ट है कि रत्नशेखर-सूरि ने आगम और लोक में प्रचलित श्रीपाल सम्बन्धी कथाओं के विविध रूपों का अध्ययन कर इस कथा को नवीन रूपाकृति प्रदान की है।

संस्कृत श्रीपाल चरित के रचयिता 15वीं सदी के विद्वान् **सकलकीर्ति भट्टारक** हैं। इन्होंने संस्कृत-भाषा में श्रीपाल-चरित नामका एक ग्रन्थ लिखा है। इस चरित-ग्रन्थ के अवलोकन से प्रतीत होता है कि श्रीपाल के मूल कथानक के सम्बन्ध में कई मान्यताएँ प्रचलित थीं।

महाकवि रङ्गधू के पूर्ववर्ती कवि **नरसेन** ने भी अपभ्रंश-भाषा में दो सन्धि-प्रमाण '**सिरिवालचरित**' नामक एक काव्य लिखा है। यों तो महाकवि रङ्गधू के समकालीन

1. दे० बृहत्कथाकोष (सिन्धी जैन सीरीज, मुंबई द्वारा प्रकाशित तथा डॉ० ए०एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित), कथा-संख्या 145
2. Siri-Siri Valkaha, Pt. I Ed. V.J. Chokshi (Ahmedabad, 1932)] Introduction, Page 13.

(4)

सत्यराजगणि ने वि०सं० 1514 में संस्कृत में एक श्रीपाल-चरित तथा **सिद्धसूरि** ने वि०सं० 1531 में श्रीपाल-नाटक एवं वि०सं० 1557 में **लब्धिसागर-सूरि** ने श्रीपाल-कथा की रचना की है। महाकवि रङ्गधू के परिवर्तीकाल में भी श्रीपाल चरितों की रचनाएँ हुई हैं। **ब्रह्मनेमिदत्त** ने 16वीं सदी में संस्कृत में श्रीपाल-चरित और **ज्ञानविमलसूरि** ने वि०सं० 1638 में श्रीपाल-चरित की रचना की है।

इस समस्त श्रीपाल-चरितों के आलोडन से अवगत होता है कि श्रीपाल की कथा के दो रूप प्रचलित रहे हैं। प्रथम रूप की मान्यता श्वेताम्बर-परम्परा में पाई जाती है और द्वितीय रूप की मान्यता दिगम्बर-परम्परा में। महाकवि रङ्गधू ने अपनी प्रस्तुत रचनासिरिवालचरिउ में दिगम्बर-मान्यता का अनुसरण किया है¹। प्रस्तुत सन्दर्भ में हम यहाँ दोनों मान्यताओं का संक्षेप में उल्लेख करने के पूर्व रङ्गधू कृत रचना की कथा संक्षेप में देना आवश्यक समझते हैं, जो सन्धि-क्रमानुसार निम्न प्रकार है

कथावस्तु

मगध-देश की **राजगृही** नगरी में राजा **श्रेणिक** राज्य करते थे। उनकी दो रानियाँ थीं। जयामती एवं चेलना। जयामती से अभयकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा चेलना से वारिषेण। किसी एक समय राजा श्रेणिक अपने राजदरबार में बैठे थे कि उसी समय वनपाल ने आकर छहों ऋतुओं के फल-फूल लाकर राजा को भेंट किए तथा **विपुलाचल** पर भगवान्

1. दिगंबर परम्परानुमोदित 'श्रीपाल चरित' सम्बन्धी निम्न सामग्री ज्ञात हो सकी है

- | | |
|----------------|---|
| संस्कृत | (1) भट्टारक सकलकीर्ति (15वीं सदी) श्रीपालचरित्र
(2) ब्रह्मनेमिदत्त (वि०सं० 1528) श्रीपालचरित |
| अपभ्रंश | (3) रङ्गधू 15-16वीं सदी सिरिवालचरिउ(अपरनाम सिद्धचक्कमाहप्प)
(4) पं० नरसेन (14वीं सदी) सिद्धचक्ककहा
(5) दामोदर(16वीं सदी) श्रीपालचरित |
| हिंदी | (6) ब्रह्मरायमल्ल(वि०सं० 1630) श्रीपालरास
(7) परिमल्ल(वि०सं० 1651) श्रीपाल चरित्र
(यह ग्रन्थ रङ्गधूकृत सिरिवालकहा का प्रायः हिन्दी अनुवाद है) |
| गुजराती | (8) न्यामतसिंह(20वीं सदी)मैनासुन्दरी नाटक
(9) भगवत(20वीं सदी)भाग्य
(10) वादिचन्द्र(वि०सं० 1661) श्रीपालाख्यान-कथा
(11) अज्ञात-श्रीपालरास |

(5)

महावीर के समवशरण में पधारने की सूचना दी। यह समाचार सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने वनपाल को वस्त्राभूषण दान कर वीर-प्रभु को परोक्ष नमस्कार किया तथा चलना के साथ समवशरण में पहुँचा। वहाँ स्तुति-वन्दन के बाद मानव-सभा में बैठ गया और वीर प्रभु से **सिद्धचक्र** की विधि एवं उसके फल का माहात्म्य पूछा। उत्तरस्वरूप **गौतम गणधर** ने श्रीपाल का कथानक निम्न प्रकार सुनाना प्रारम्भ किया।

मालव-देश की **उज्जयिनी नगरी** में राजा **पहुपाल** (पृथिवीपाल) अपनी विजयश्री नामकी रानी के साथ राज्य करता था। कालान्तर में उसकी दो पुत्रियाँ हुई, **सुरसुन्दरी** एवं **मैनासुन्दरी**। जब वे दोनों कन्याएँ बड़ी हुई, तब पहुपाल ने सुरसुन्दरी को **शैव-गुरु** के पास तथा मैनासुन्दरी के लिए **जैनगुरु** के पास विद्याध्ययनार्थ भेजा। दोनों पुत्रियों ने अपने-अपने गुरुओं के पास सर्वांगीण अध्ययन किया। सुरसुन्दरी वेद, पुराण, वैद्यक, कोकशास्त्र आदि पढ़कर वापिस अपने घर लौटी।

मैनासुन्दरी ने 'णमोसिद्ध' से अपना अध्ययन प्रारम्भ किया तथा अल्पकाल में ही बारह-भावना, अणुव्रत, महाव्रत, चरित, पुराण, गुणस्थान, मार्गणाएँ, काव्य, व्याकरण, अलंकार, विधिशास्त्र, ज्योतिष, नय, प्रमाण, भव्य-संगीत, नाट्यशास्त्र, तर्कशास्त्र, षड्दर्शन, रत्नपरीक्षा, अद्वारह-लिपियाँ, सोलह-कारण-भावना, दशलक्षणधर्म, कर्मविपाक-सूत्र, रोगनिदान, औषधिशास्त्र, सामुद्रिक-शास्त्र, आदि का ज्ञान प्राप्त किया तथा अपने पिता के घर लौट आई। अपनी पुत्रियों को विदुषी के रूप में देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। (कड़वक 1-14, प्रथम-सन्धि)

एक दिन राजा पहुपाल सुखासन पर बैठा हुआ था कि अचानक ही दोनों पुत्रियाँ वहाँ आईं। राजा ने उनकी परीक्षा हेतु निम्न समस्या को सम्मुख रखकर सर्वप्रथम सुरसुन्दरी को उसकी पूर्ति हेतु आदेश दिया

समस्या

..... **पुण्णें लब्भइ एहु ॥**

.....अर्थात् पुण्य से ही प्राप्त होता है।

सुरसुन्दरी ने पिता के आदेश से उसकी पूर्ति निम्न प्रकार की

समस्यापूर्ति

विज्जा-जोव्वण-रूव-धणु धरु-परियणु-कयणेहु ।

बल्लहजणमेल्लावउ पुण्णें लब्भइ एहु ॥ (2/1)

(6)

अर्थात् इस संसार में विद्या, यौवन, सौन्दर्य, धन, भवन, परिजनों का स्नेह एवं प्रियजनों का संयोग पुण्य से ही प्राप्त होता है।

उक्त समस्यापूर्ति से राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने प्रसन्न होकर **सुरसुन्दरी** से इच्छानुसार वरदान माँगने को कहा। सुरसुन्दरी ने भी अवसर देख वरदान माँग लिया और कौशाम्बी-नरेश के पुत्र **राजा हरिवाहन** से अपना विवाह कर देने की प्रार्थना की। राजा ने वैसा ही कर दिया।

अब मैनासुन्दरी की बारी थी। राजा ने उसे भी उक्त समस्या की पूर्ति हेतु आदेश दिया। उसने निम्न प्रकार उस समस्या की पूर्ति की

**जिण-सासण-णिगंथ-गुरु वय-तउ-णिम्मलु देहु।
अप्पा-परहँ विचार-गुणु पुण्णें लब्भइ एहु।। (2/3)**

अर्थात् इस संसार में जिनशासन, निर्ग्रन्थ-गुरु, व्रत एवं तप करने की क्षमता, निर्मल देह तथा अपने-पराए का विवेक-गुण ये सब पुण्य से ही प्राप्त होते हैं।

मैनासुन्दरी की समस्या-पूर्ति से राजा ने प्रसन्न होकर उसे भी इच्छानुसार अपना वर चुनने का आदेश दिया किन्तु इसे सुनकर वह चुपचाप रह गई। राजा के बार-बार पूछने पर उसने बड़ी ही लज्जा के साथ निवेदन किया कि *कुलवती कुमारियाँ कभी भी अपने मुँह से वर नहीं माँगी। माता-पिता, स्वजन एवं गुरुजन जिनके साथ उसका विवाह कर देते हैं, उनके लिए वही वर कामदेव के तुल्य हो जाता है। चाहे वह अंधा, लूला, लँगड़ा, काना, बहरा, कोढ़ी, रोगी, राव, रंक, बाल, वृद्ध, सुन्दर, कुरूप, मूर्ख, पण्डित, निर्दयी, निर्लज्ज अथवा सर्वगुण-सम्पन्न, कैसा ही क्यों न हो, वही उन कुमारियों के लिए सर्वस्व बन जाता है। कन्याओं का भला-बुरा उनके कर्मों के फल के अनुसार ही होता है।* राजा मैनासुन्दरी के इस कथन से बड़ा क्रुद्ध हो जाता है। (कड़वक 1-14 द्वितीय-सन्धि)

चम्पापुर में राजा **अरिदमन** राज्य करता था। उसकी रानी कुन्दप्रभा से **श्रीपाल** नामक एक होनहार पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। बड़ा होने पर उसे विद्यार्जन-हेतु गुरु के पास भेजा गया, जहाँ उसने अक्षर, मात्रा, पुराण, तर्क, अलंकार, ग्रह, प्रमाण, छत्तीस-गुण, गृहकार्य, जल-संतरण, राजनीति-शिक्षा, छंद, व्याकरण, बहत्तर-कलाएँ, विज्ञान, नाटक-भेद, गान्धर्व-विद्या एवं सवारी आदि की शिक्षाएँ अल्पकाल में ही प्राप्त कर लीं। शिक्षा-प्राप्ति के बाद ही श्रीपाल पर घोर संकट उपस्थित हो गया। उसके पिता की अचानक ही मृत्यु हो गई। अतः राज्यभार उसे सँभालना पड़ा किन्तु दुर्भाग्य से उसे भी अकस्मात् **कुष्ठ-व्याधि** हो गई।

(7)

उसका सारा शरीर गलने लगा। अतः अपने **चाचा वीरदमन** को राज्य सौंपकर वह अपने पाँच सौ कोढ़ी साथियों के साथ राज्य के बाहर निकल गया और चलते-चलते **उज्जयिनी** पहुँचा।

उधर राजा पहुपाल, जो कि अपनी पुत्री **मैनासुन्दरी** के कर्मफल की बात सुनकर क्रुद्ध होकर बैठा था, उसने उस कोढ़ी राजा **श्रीपाल** के उज्जयिनी आगमन की बात सुनी। वह तुरन्त जाकर उससे मिला तथा बातचीत कर उसी के साथ **मैनासुन्दरी** का विवाह कर दिया। रानी, मंत्री आदि सभी ने राजा को धिक्कारा लेकिन उसने एक भी नहीं सुनी तथा दान-दहेज के साथ मैनासुन्दरी को विदा कर दिया। मैनासुन्दरी अपने माता-पिता, गुरुजनों एवं परिचितों से क्षमायाचना कर अपने पतिगृह चली गई। इस विवाह से श्रीपाल अत्यन्त प्रसन्न था। उसने अपनी पत्नी मैनासुन्दरी को अपना सारा वृत्तान्त यथार्थ रूप में बता दिया।

(कड़वक 1-20, तृतीय-सन्धि)

मैनासुन्दरी के मन में इस विवाह से किसी भी प्रकार का दुःख उत्पन्न न हुआ। वह तन-मन-धन से ग्लानि-रहित होकर पतिसेवा में लीन हो गई। प्रतिदिन जिनदेव की पूजा-भक्ति करती तथा पति को **गन्धोदक** का सेवन कराती। फलस्वरूप श्रीपाल का कोढ़ धीरे-धीरे दूर होने लगा।

एक दिन पति-पत्नी दोनों जिन-मन्दिर गए। वहाँ एक मुनिराज के दर्शन हुए। मुनिराज ने उन्हें **सिद्धचक्र-विधि** एवं उसके माहात्म्य पर उपदेश किया। मैनासुन्दरी एवं श्रीपाल दोनों ही उससे प्रभावित होकर वापिस आए और तदनुसार सिद्धचक्र का विधि-विधान करने लगे। फलस्वरूप श्रीपाल का शरीर पुनः कुन्दन के समान बन गया।

इधर, (राजा) पहुपाल ने क्रोधवश मैनासुन्दरी का विवाह कोढ़ी के साथ कर तो अवश्य दिया था, किन्तु बाद में वह रोने-कलपने लगा तथा बार-बार अपने को धिक्कारने लगा। एक दिन उसकी रानी जिन-मन्दिर गई। वहाँ वह अपनी पुत्री **मैनासुन्दरी** को एक सर्वांगसुन्दर एवं स्वस्थ युवक के साथ देखकर स्तम्भित रह गई। उसे विश्वास हो गया कि मेरी पुत्री पथभ्रष्ट हो गई है। मैनासुन्दरी ने अपनी माँ के हृदय की बात जान ली। अतः तुरन्त ही **सिद्धचक्र** के माहात्म्य से **श्रीपाल** के पूर्ण स्वस्थ हो जाने का सारा वृत्तान्त उसे कह सुनाया, जिससे माँ फूली न समाई। वह दौड़ी-दौड़ी घर गई। जब राजा को यह समाचार मिला तो वह श्रीपाल के पास आया। उसे गले लगाया तथा अपने घर ले आया और वहीं रहने का आग्रह किया, जिसे श्रीपाल ने स्वीकार कर लिया।

(कड़वक 1-16, चतुर्थ-सन्धि)

आगे का कथानक अतिविस्तृत है। उसमें श्रीपाल का भृगुकच्छ (भड़ौंच) में 10 सहस्र

(8)

सुभटों तथा 500 मालवाही-पोतों के स्वामी **महासार्थवाह धवल सेठ** से परिचय, अपनी जलतारिणी एवं विघ्न-निवारिणी विद्याओं के प्रयोग से प्रभावित कर धवल सेठ का विश्वस्त मित्र बनकर उसके साथ समुद्री-मार्ग से विदेश-यात्रा, **हंसद्वीप** में प्रवेश, समुद्री-लुटेरों के आक्रमण का सामना कर तथा उन पर विजय प्राप्त करते हुए उनका **हंसद्वीप** पहुँचना (पाँचवीं सन्धि)

हंसद्वीप की राजकुमारी **रयणमंजूषा** के साथ श्रीपाल का विवाह, रयणमंजूषा के सौन्दर्य से धवल सेठ की मोहासक्ति, धवल सेठ श्रीपाल को उफनते समुद्र में फेंककर रयणमंजूषा को आकर्षित करने का प्रयास करता है, किन्तु असफल रहता है।

रयणमंजूषा पति-विछोह में करुण-क्रन्दन करती रहती है। उसके शील-व्रत के चमत्कार से अनेक देवियाँ धूर्त धवल सेठ को कठोर सजा देती है अतः वह उससे क्षमायाचना करता है। (छठवीं सन्धि)

श्रीपाल समुद्र में तैरकर **कुंकुमद्वीप** पहुँचता है। वहाँ की राजकुमारी **गुणमाला** के साथ उसका विवाह और इधर वह धवल सेठ भी सदल-बल कुंकुमद्वीप में पहुँचता है और श्रीपाल को वहाँ जीवित देखकर दुखी हो जाता है। अपना अपराध छिपाने के लिए वह श्रीपाल को वहाँ के राजा के सम्मुख एक **मातंगपुत्र** घोषित करता है और एक धूर्त राज्य-मन्त्री को एक लाख **दीनारों** (मुद्राएँ) की **रिश्वत** देकर उसके बनावटी माता-पिता एवं परिवार वालों को एकत्र कर देता है, किन्तु गुणमाला वास्तविकता का पता लगाकर धवल सेठ को राजा से कठोर दण्ड दिलाती है।

वहाँ से आगे चलकर वह श्रीपाल मार्ग में **चित्ररेखा** एवं **कंचनमाला** के साथ विवाह करता हुआ, **कोंकणपट्टन** पहुँचता है। वहाँ के राजा **यशराशि** की 1600 पुत्रियाँ थीं, जिनमें से 8 पुत्रियाँ बड़ी विदुषी किन्तु अहंकारिणी थीं। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो युवक उनके द्वारा प्रस्तुत समस्याओं की पूर्तियाँ करेगा, वे उसी के साथ अपना विवाह करेंगी। श्रीपाल ने बड़ी कुशलतापूर्वक उनकी समस्यापूर्ति की। अतः राजा यशराशि ने प्रमुदित होकर अपनी समस्त 1600 कन्याओं का विवाह श्रीपाल के साथ कर दिया।

तत्पश्चात् **कांचनपुर** नरेश की 500, **मुंडवादि** देश के राजा की 700 कन्याओं, **तिलंग** देश के नरेश की 1000, **सोरठ** देश के राजा की 500 कन्याओं, **गुजरात** नरेश की 400 कन्याओं तथा **मेवाड़** नरेश की 200 कन्याओं के साथ विवाह कर वह पल्लिराज खश, बब्बर तथा मालवा के शत्रुओं को पराजित करता हुआ **उज्जयिनी** पहुँचा। वहाँ अपनी माँ तथा पत्नी मैनासुन्दरी से भेंट की।

(9)

अपने पिता से क्रुद्ध मैनासुन्दरी की प्रेरणा से उसका पिता राजा पदुपाल कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर कम्बल ओढ़कर तथा लंगोटी बाँधकर एक लकड़हारे के वेश में आकर जब श्रीपाल से क्षमादान करने का सन्देश भेजता है, तो श्रीपाल उसे लकड़हारे के वेश में न आने की सूचना देता है। अतः वह (राजा) प्रसन्न होकर अपने उस जामाता श्रीपाल को सादर अपने घर ले आता है। (आठवीं सन्धि)

श्रीपाल के जीवन का संघर्ष यहीं समाप्त नहीं हुआ। वह अपने खोए हुए साम्राज्य को अपने चाचा वीरदमन से युद्ध कर उसे बुरी तरह पराजित कर अंगदेशस्थ **चम्पापुरी** का अपना साम्राज्य पुनः प्राप्त कर लेता है।

साम्राज्य प्राप्ति के बाद वह **राजा धरणिपाल** के नाम से प्रसिद्ध हुआ और सुचारु रूप से प्रजा-पालन करने लगा। कालान्तर में उसके 12800 पुत्र उत्पन्न हुए।

अन्त में एक मुनिराज से धर्म-श्रवण कर उसने राज्य-पाट त्यागकर दीक्षा ग्रहण कर ली और निर्वाण-पद प्राप्त किया। (नौवीं-दसवीं सन्धि)

श्वेताम्बर-परम्परा में श्रीपाल-चरित का मूल कथानक लगभग उपर्युक्त जैसा ही है। उन दोनों परम्पराओं में जो कुछ अन्तर है, वह निम्न प्रकार है

1. माता-पिता के नामों में अंतर
2. श्रीपाल की राज्यगद्दी एवं रोग सम्बन्धी अन्तर
3. माँ के साथ रहने तथा वैद्य सम्बन्धी घटना में अन्तर
4. मैनासुन्दरी आदि के विवाह सम्बन्धी अन्तर
5. परिणीता राजकुमारियों की माता तथा राजकुमारियों के नामों में अन्तर
6. विवाहोपरान्त श्रीपाल की भ्रमण यात्राओं के वर्णन में अन्तर तथा
7. श्रीपाल की माता एवं पत्नी के मिलन-वर्णन में अन्तर

ग्रन्थकार

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक महाकवि रङ्गू हैं। विपुल साहित्य रचनाओं की दृष्टि से इस कवि की तुलना में ठहरने वाले अन्य प्रतिस्पर्धी कवि के अस्तित्व की सम्भावना अपभ्रंश-साहित्य में नहीं की जा सकती। मेरी दृष्टि में यह ऐसा प्रथम कवि है, जिसमें एक साथ प्रबन्धकार, दार्शनिक, आचार-शास्त्र-प्रणेता एवं क्रांतिदृष्टा का समन्वय हुआ है। इसके प्रबन्धात्मक आख्यानों में सौन्दर्य को पवित्रता एवं मादकता, प्रेम की निश्छलता, माता-पिता का वात्सल्य, पाप एवं दुराचारों का निर्मम दण्ड, वासना की मांसलता का प्रक्षालन, आत्मा का सुशान्त

(10)

निर्मलीकरण, रोमांस का आसव एवं संस्कृति के पीयूष का मंगलमय सम्मिलन, प्रेयस् और श्रेयस् का ग्रन्थिबन्ध और इन सबसे ऊपर त्याग एवं कषाय-निग्रह का निदर्शन समाहित है। इन सबके लिए उसका प्रस्तुत सिरिवालचरिउ सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

महाकवि रङ्ग का जन्म-स्थल अज्ञात है किन्तु उसकी ग्रन्थ-प्रशस्तियों से यही विदित होता है कि **गोपाचल दुर्ग** (वर्तमान ग्वालियर, म०प्र०) उसकी साहित्य-साधना का स्थल रहा था। वहाँ तोमरवंशी राजा **डूंगरसिंह** एवं उसके पुत्र राजा **कीर्तिसिंह** उसका बहुत ही आदर-सम्मान करते थे तथा उन्हीं के अनुरोध से गोपाचल-दुर्ग में रहकर ही रङ्ग ने लगभग 30 ग्रन्थों की रचना की। उनमें प्रयुक्त भाषाओं को देखकर यह स्पष्ट विदित होता है कि अपभ्रंश के साथ-साथ संस्कृत, प्राकृत एवं हिन्दी पर भी उसका पूर्ण अधिकार था।

उसकी उपलब्ध रचनाएँ निम्न प्रकार हैं

1. तिसट्टि-महापुराणपुरिसायारगुणालंकारु (अपरनाम महापुराण) 50 सन्धियाँ तथा 1531 कड़वक
2. पासणाहचरिउ (10 सन्धियाँ, 138 कड़वक)प्रकाशित
3. गेमिणाहचरिउ (अपरनाम हरिवंसपुराणु, 14 सन्धियाँ, 302 कड़वक)
4. सम्मइजिणचरिउ (10 सन्धियाँ, 245 कड़वक)प्रकाशित
5. मेहेसरचरिउ (13 सन्धियाँ, 304 कड़वक)
6. सिरिवालकहा (10 सन्धियाँ, 192 कड़वक)
7. बलहद्वचरिउ (अपरनाम पउमचरिउ, 12 सन्धियाँ, 254 कड़वक)
8. सुक्कोसलचरिउ (4 सन्धियाँ, 74 कड़वक)प्रकाशित
9. धण्णकुमारचरिउ (4 सन्धियाँ 74 कड़वक)प्रकाशित
10. जिमंधरचरिउ (अपरनाम सोलहकारणव्रत-विधान-काव्य, 13 सन्धियाँ, 301 कड़वक)
11. सम्मत्तगुणणिहाणकव्व (4 सन्धियाँ, 102 कड़वक)
12. वित्तसारो (प्राकृत-प्रकाशित) (7 अंक, 893 कथाएँ)
13. सिद्धंतत्थसारो (प्राकृत) (13 अंक, 1933 गाथाएँ)
14. जसहरचरिउ (सचित्र, त्रुटित, 4 सन्धियाँ, 104 कड़वक)
15. संतिणाहचरिउ (सचित्र, त्रुटित)
16. पुण्णासवकहा (14 सन्धियाँ 250 कड़वक)प्रकाशित
17. अणथमिउकहा (17 पद्य)प्रकाशित
18. सोलहकारण भावणा (प्राकृत) 16 पद्य)प्रकाशित

(11)

19. दसलक्षण-जयमाला (प्राकृत) (10 पद्य) प्रकाशित
20. बारह-भावना (हिन्दी) (14 पद्य)

महाकवि रङ्ग की अद्यावधि अनुपलब्ध रचनाओं में (1) सुदंसणचरित, (2) पञ्जुण्णचरित, (3) भविस्सयत्तचरित, (4) करकंडचरित, (5) रत्नत्रयी एवं (6) उवएसरयणमाल हैं। सिरिवालचरित की पाण्डुलिपि **पेरिस (फ्रांस)** में सुरक्षित है।

समुद्री-वायु के प्रकार

सिरिवालचरित में समुद्र-यात्रा का बड़ा लोमहर्षक वर्णन किया गया है। उसमें एक प्रसंग में बतलाया गया है कि एक बार समुद्र में वायु प्रकुपित हो उठी, भयानक तरंगें उठने लगीं और उसने रौद्ररूप धारण कर लिया। अतः महासार्थवाह के समुद्री-जल-पोतों का आगे बढ़ना कठिन हो गया। वस्तुतः समुद्र-यात्रा की निर्विघ्न-समाप्ति का सारा श्रेय अनुकूल वायु पर ही निर्भर करता है और अनुभवी कुशल निर्यामकों का होना समुद्री-वायु के रुखों का सुज्ञान समुद्री-यानों के सुरक्षित संचालन के लिए अत्यावश्यक माना गया है।

सूत्रकृतांग-टीका (1/17) के अनुसार हवाएँ सोलह प्रकार की होती हैं (1) पूर्वी-वात, (2) उदीचीन-वात (उत्तराहट), (3) दक्षिणात्य-वात (दखिनाहट), (4) उत्तरपौरस्त्य (सम्मुख से आती हुई उत्तराहट), (5) सरवासुक, (6) दक्षिण-पूर्वतुंगार (दक्षिण-पूर्व से चलती हुई जोरदार हवा), (7) अपर दक्षिण-वीजाप (दक्षिण-पश्चिम से चलने वाली हवा), (8) अपर वीजाप (पछुवा हवा), (9) अपरोत्तर-गर्जम (पश्चिमोत्तरी तूफान), (10) उत्तर-सत्त्वासुक, (11) दक्षिण सत्त्वासुक, (12) पूर्व-तुंगार, (13) दक्षिण-वीजाप, (14) पश्चिम-वीजाप, (15) पश्चिमी-गर्जम तथा (16) उत्तरी गर्जम। इन हवाओं के रुख को ध्यान में रखते हुए ही कुशल निर्यामक (पोत-संचालक) पोतों (समुद्री यानों) का संचालन किया करते थे।

विदेशों में क्रय-विक्रय की वस्तुएँ

भारतीय महासार्थवाह विदेशों में विक्रय के लिए **गणिम** (गिनने योग्य फलादि), **धरिम** (तौलकर बेचने योग्य जैसे काली मिर्च, कृष्णकली अथवा लौंग), **परिच्छेय** (फाइकर बेचने योग्य जैसे चंदन की लकड़ी वस्त्रादि) और **मेय** (मापकर बेचने योग्य तैलादि) वस्तुएँ ले जाया करते थे और बदले में वहाँ के उत्पादनों यथा हीरा, मोती, माणिक्य स्वर्णादि वस्तुएँ लाया करते थे।

ग्रन्थ मूल्यांकन

प्रस्तुत सिरिवालचरित एक पौराणिक चरित काव्य है। ग्रन्थकार महाकवि ने **श्रीपाल** और **मैनासुन्दरी** के आख्यान को लेकर **सिद्धचक्रविधान** के महत्त्व को प्रदर्शित किया है। सिद्धचक्र वह मांत्रिक अनुष्ठान है जो विधिपूर्वक आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक विशेष विधि से सम्पन्न किया जाता है। इस अनुष्ठान का महत्त्व जैन-शास्त्रों में बहुत वर्णित है। मैनासुन्दरी ने सिद्धचक्रयंत्र का अभिषेक किया और उसी अभिषेक के जल से सिंचन करने पर श्रीपाल के कुष्ठ-रोग को दूर कर उसे उसने पूर्ण स्वस्थ बनाया।

रङ्ग ने अपने इस काव्य में चरित-काव्य के गुणों का समावेश करने के हेतु वर्धमान महावीर की समवशरण-सभा का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है¹। उसमें बताया है सम्राट **श्रेणिक** भगवान् महावीर से सिद्धचक्र विधान के महत्त्व एवं उसके फल-भोक्ता व्यक्ति के आख्यान के कथन की प्रार्थना करता है।

गौतम गणधर श्रेणिक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए **श्रीपाल** की कथा का वर्णन करते हैं। कवि रङ्ग ने आरम्भ में ही चरित-काव्य की नायिका **मैनासुन्दरी** की सत्यनिष्ठा, विवेकशीलता एवं सम्यक्-श्रद्धा का सुन्दर चित्रण किया है। कवि ने नायक श्रीपाल के गुणों का विकास तो पाँचवीं सन्धि से दिखलाया है, किन्तु आरम्भ की 4 सन्धियों में नायिका के चरित के गुणों पर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। कवि ने नायिका की शिक्षा-दीक्षा का विवेचन करते हुए लिखा है

गुण-मत्ताभेयइँ कव्वअणेयइँ वायरणइ-लंकार-विहि ।
सुरकोसुपसिद्धउ जोइसु सिद्धउ नय-पमाण संजणिय दिहि ॥

1/13 घत्ता

पुणु रोय अणेयइँ उसह जोयइँ सामुद्दु जि तणु-लक्खणइँ ।
मुणि पासि पढेप्पिणु पय-पणवेप्पिणु जिण अच्चेप्पिणु सुहमणइँ ॥

1/14 घत्ता

प्रसंगवश कवि रङ्ग ने **भारतीय नारी के आदर्श** का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। जब पट्टपाल (पृथिवीपाल) नृपति मैनासुन्दरी को सुरसुन्दरी के समान ही जीवन-साथी के

1. सिरिवाल० 1/5

(13)

चुनाव का आदेश देता है तो **मैनासुन्दरी** अपने पिता के विषय में विचार करती है

कुलमग्गु ण याणइ अलिय भासि । नियगेहे आणइ अवजसुहरासि ।। 2/4/8

अर्थात् मेरे पिता कुल-परम्पराओं को जानते नहीं, असत्य भाषी हैं, और अब अपने घर में अपयश ला रहे हैं।

**जिह मइमत्तु गइंदु णिरंकुसु । जं भावइ तं बोलइ जिह सिसु ।
जायंधु वि जह मग्गु ण जाणइ । चउदिसु धावमाणु दुहु माणइ ।
तिहि राणउ लज्जा मेल्लिवि । जं रुच्चइ तं चवइ उवेल्लिवि ।।**

2/5/8-11

अर्थात् जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी निरंकुश हो जाता है, उसी प्रकार हमारे पिताजी भी निरंकुश हो गए हैं। अज्ञानी बच्चों के समान ही जो मन में आता है सो बोलते हैं। जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति मार्ग नहीं जानता और चारों दिशाओं में दौड़ता-दौड़ता दुःखभाजन बनता है ठीक उसी प्रकार ये भी मान-मर्यादा छोड़कर जो मन में आता है वही कर और बोल रहे हैं।

इसके बाद वह अपने पिता को बड़ी ही निर्भीकता के साथ उत्तर देती है

**भो ताय-ताय पइँ णिरु अजुत्तु । जंपियउ ण मुणियउ जिणहु सुत्तु ।।
वरकुलि उवण्ण जा कण्ण होइ । सा लज्ज ण मेल्लइ एच्छ लोय ।।
वादाववाउ नउ जुत्तु ताय । तहँ पुणु तुअ अक्खमि णिसुणि राय ।।
बिहु लोयविरुद्धउ एहु कम्मु । जं सुव सइंवरु गिण्हइ सुछम्मु ।।
जइ मण इच्छइ किज्जइ विवाहु । तो लोयसुहिल्लउ इहु पवाहु ।।**

2/6/5

अर्थात् हे पिताजी, आपने जिनागम-सूत्रों के विरुद्ध ही मुझे अपने आप अपने पति के चुनाव कर लेने का आदेश दिया है। किन्तु जो कन्याएँ कुलीन होती हैं वे कभी भी ऐसी निर्लज्जता का कार्य नहीं कर सकतीं। हे पिताजी, इस विषय में मैं वाद-विवाद भी नहीं करना चाहती, इसीलिए आप मेरी प्रार्थना ध्यानपूर्वक सुनें। आपका यह कार्य लोकविरुद्ध होगा कि आपकी कन्या स्वयम्बर करके अपने पति का निर्वाचन करे। अतः मुझसे कहे बिना ही आपकी इच्छा जहाँ भी हो, वहीं पर मेरा विवाह कर दें...।

(14)

जा वुच्चइ कुल उप्पण्ण णारि । परियण जणमण णिरु सुक्खयारि ।।
जोव्वणीरूढी पिच्छेवि ताउ । मणिं चिंत वहइ पुणु-पुणु सुभाउ ।।
णिब्भरु होमि किं देमि कासु । को जोगु अच्छि कहु कुल-पयासु ।।
इय चिंतिवि पुणु परियणु महंतु । हक्कारिवि कीरइ सा रमंतु ।।
कुल जाय विसुद्धउ वसणचत्तु । करु रोप्पहि निय कुलमग्गरत्तु ।।
जण पंच मिलिवि मंगलसरेहि । किज्जइ विवाहु चलचामरेहि ।।
पुणु जणणु समप्पइ वरहु हच्छि । परियणु विसमट्टइ तासु सच्छि ।।
कुलमग्गु तियहँ णिव एम होइ । तुव वयणें तासु विणासइ लोइ ।।

2/7/1-8

अर्थात् जब किसी उच्च कुल में नारी जन्म लेती है तब वह निश्चय ही परिजनों के मानस को सुखकर होती है। उसे युवावस्था को प्राप्त देखकर पिता के मन में इस प्रकार की चिन्ता उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि “मैं किस प्रकार निश्चिन्त होऊँ, योग्य वर के हाथ में कैसे दूँ? कौन इस कन्या के योग्य वर है, कौन वर कुल-प्रकाशक है।” इस प्रकार परिवार के बड़े जन स्वयं ही विचार करके वर की खोज करते हैं और कुलीन, आचरण से पवित्र, व्यसन-त्यागी अपनी पुरातन परम्पराओं के प्रेमी वर को खोजकर पंच लोग मिलकर मंगल-स्वरों से कन्या का पाणिग्रहण करा देते हैं। पुनः पिता जब कन्यादान कर देता है, तब सभी परिजन प्रसन्न होते हैं। हे राजन्, यही कुलमार्ग है। किन्तु आपने जैसा कहा है, वह तो निश्चय ही इस लोक एवं परलोक का नाशक है।

इतना ही नहीं, मैनासुन्दरी अपनी बात आगे भी सुनाती ही गई। वह अपनी बड़ी बहन सुरसुन्दरी द्वारा स्वयं निर्वाचित पति संबंधी कार्य को कुल-कलंक कहती है तथा भवितव्यता को सर्वोपरि मानती हुई पुनः कहती है

...भवियव्वु ण फेडइ कोवि कासु । परिणवइ सुहासुहकम्मपासु ।।
णउ कोवि कासु सुहु विच्छरेइ । दुक्खु ण परमच्छें कुवि करेइ ।।

2/9/9-10

अर्थात् हे पिताजी, भवितव्यता को कोई नहीं में सकता। कर्मों के शुभाशुभ फल को कोई भी नहीं बदल सकता। न कोई किसी का सुख छीन सकता है और न कोई किसी के दुःख को बदल ही सकता है।

(15)

सामिउ जि भिच्चु पुणु सो णरेसु । पुणु सो संभवइ जि किमि विसेसु ॥
अरि होइ मित्तु-मित्तु जि महारि । तिय मरिवि पुत्ति पुणु सा जि णारि ॥
मह रुववंतु पुणु रुवहीणु । धण धण पुण दालिद्वरीणु ॥
कम्मायत्तउ जगु सयलु राउ । परिणवइ एच्छु भवि विविह भाउ ॥
कम्मेण राउ कम्मेण रंकु । कम्मेण जीउ पयडिय कलंकु ॥

2/11/2-6

अर्थात् स्वामी भृत्य बन जाता है और पुनः वही नरेश भी हो जाता है। भवितव्यता से क्या संभव नहीं है? शत्रु मित्र बन जाता है और मित्र महान् शत्रु। पत्नी मरकर पुत्री बन जाती है और पुत्री ही नारी। महान् सौन्दर्यवान् कुरूपता को प्राप्त हो जाता है तथा अत्यन्त धनाढ्य व्यक्ति दरिद्र हो जाता है। हे राजन्, इस संसार में सभी लोग कर्माधीन हैं। वही लोगों को नए-नए नाच नचाता रहता है। कर्म से ही व्यक्ति राजा बनता है और कर्म से ही रंक। कर्म-फल से ही यह जीवन कलंकित अथवा निर्मल बनता है...

तीसरी सन्धि में कवि ने कई मार्मिक स्थल उपस्थित किए हैं। मैनासुन्दरी का पिता क्रोधावेश में आकर मैनासुन्दरी का विवाह कुष्ठी श्रीपाल से कर देता है¹। विवाह हो जाने के अनन्तर जब दामाद का विकृत रूप देखता है तो उसका हृदय विदीर्ण होने लगता है। उसका मन उसे धिक्कारता है कि क्रोध के कारण मैंने अपनी रति के समान सुन्दरी पुत्री को इस प्रकार के कुष्ठरोगी के हाथ सौंपकर बहुत ही अनुचित कार्य किया है। उसका मानसिक द्वन्द्व चरम सीमा पर पहुँच जाता है और बरसाती बाँध के समान जब भावावलि उसके हृदय को तोड़कर आगे बढ़ने लगती है तो वह मैनासुन्दरी से क्षमायाचना करता हुआ कहता है

हा-हा हउँ णठ्ठमइ अप्पाणु । एहउ आयरइ ण डोमु पाणु ॥
हा-हा मइ हा रिउ णिवह मग्गु । णिय मणुवज्जमु सग्गापवग्गु ॥
हउँ अवजसु भायणु एच्छु लोउ । महु णामें पाव महंतु होउ ॥
दंसावमि लोयहु वयण केमु । सुव अंकि णिहिद्विउ रुव्वइ एमु ॥
हा-हा पुत्ति जिणामय पवीण । मय पावें पविहिय खणि ण दीण ॥
..... ।..... ॥

1. सिरिवाल० 3/16-17

(16)

घत्ता ।

णउ कोइ वि लक्खइ मुइजणपक्खइ हउँ सठु धिट्ठु वि पावमइ ।। 3/18/1-5, 10

मैनासुन्दरी की दृढ़ता यहाँ पर भी प्रशंसनीय है। उसे कर्म-सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास है। “लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं को समर्थः” पर उसकी पूर्ण आस्था है। अतः वह पिता को मधुर-वाणी में उत्तर देती हुई कहती है “पूज्य तात्, आपका कोई भी दोष या अपराध नहीं, आप व्यर्थ ही चिंतित होते हैं। यह सब मेरे किए हुए पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है। यह जीव जैसा शुभाशुभ आचरण करता है, उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ता है। मन, वचन और काय द्वारा स्पन्दित-क्रिया को योग कहा जाता है और यह योग ही आश्रव है। शुभ-योग पुण्याश्रव का कारण होता है और अशुभ-योग पापाश्रव का। मैंने किसी जन्म-जन्मान्तर में अशुभ कर्म का अर्जन अवश्य किया है और उसी का फल मुझे अब प्राप्त हो रहा है। कवि रइधू ने लिखा है

अवगण्हहु सोउ किं दोसु तुम्हु । भुंजिवउ चिरुकिउ कम्म अम्हु ।।

णउँ तुम्हि करहु मह अहिउ जम्मि । इहु आणि घडायउ दइउ कम्मि ।।

3/18/7-8

मनस्वी श्रीपाल स्वस्थ होकर जब कुछ दिन ससुराल में रह चुका तब एक दिन मध्यरात्रि के समय उसकी नींद टूट गई और वह सोचने लगा कि यहाँ पर **राज-जामाता** होकर रहना अपने कुल को अपमानित करना है। यहाँ सभी लोग मुझे राजा-जमाई कहते हैं। मेरे कुल का कोई नाम भी नहीं लेता। यह परिस्थिति मुझे असह्य है। इस प्रकार उसके मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होने लगे।

पति को जगते हुए देखकर मैनासुन्दरी ने पूछा कि आज आपकी नींद मध्यरात्रि में ही क्यों टूट गई? चिन्ता के कारण आपका मुखपद्म मुरझा गया है, सौन्दर्य की आभा अस्त होती हुई चन्द्रिका के समान मलिन मालूम पड़ रही है। क्या किसी ने आपका अपमान किया है या किसी ने दुर्वचन कहे हैं? आपकी यह व्याकुलतापूर्ण स्थिति मुझे सह्य नहीं है। प्राणनाथ! अपने मन की समस्त वेदना मुझे बता देने की कृपा करें। कवि रइधू ने इस प्रसंग का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। वह कहता है

..... । किं का वि चिंत णियमणि वहहो ।।

किं राय किं पि दुब्बोलियाउ । किं णिययदेसु पुणु सल्लियाउ ।।

(17)

किं केणवि आणापसरुहउ । किं अणतियहिं पुणु मणु खुहिउ ।।

.....
किं सिद्धजंतुपुणु वीसरिउ । किं रोयदुक्खु पुणु वि फुरिउ ।।
तं कारणु वल्लह महु भणहु ।.....सिरिवाल० 5/1/4-7

जब श्रीपाल **विदेश यात्रा** के समय अपनी माँ के समक्ष उससे विदा लेने हेतु पहुँचता है तब माँ के हृदय की ममता फूट पड़ती है और उसके हृदय-तल में छिपा हुआ स्नेह-जल चूने लगता है। कवि रङ्ग ने इस दृश्य का भी सुन्दर चित्रण किया है। माँ उपदेश देती हुई कहती है

तुहु पेच्छिवि णयणइँ संतुडइँ । तुव पेच्छिवि मणि दुक्खइँ णडइँ ।
तुव दंसण-विणु महु सुअ वासरु । कहव ण खुडइँ णं संवच्छरु ।।
पुणु वि जाहि जिणणाहु तिक्कालेण जि दुरियहरो ।
चउविहसंघहु दाणु दिजहि णिरुवहु सुक्खयरु ।।

सिरिवाल० 5/6/7-15

छठवीं सन्धि में कवि ने धवल सेठ की काम-विह्वल अवस्था का सुन्दर चित्रण किया है। अलंकार-शास्त्र में कामियों की 10 अवस्थाएँ वर्णित हैं¹। **प्रथमावस्था** में चिन्ता उत्पन्न होती है। **द्वितीय अवस्था** में प्रिय के संगम की आकांक्षा जागृत होती है। **तृतीयावस्था** में प्रिय के मिलने के कारण दीर्घ निश्वासें चलती हैं। **चौथी अवस्था** में काम-ज्वर उत्पन्न होता है। **पाँचवीं अवस्था** में शारीरिक अंग जलने लगते हैं। **छठवीं अवस्था** में भोजन भी अच्छा नहीं लगता है। **सातवीं अवस्था** में मूर्च्छा उत्पन्न होती है। **आठवीं अवस्था** में उन्माद होता है। **नवीं अवस्था** में प्राणों में भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है और **दसवीं अवस्था** में कामी जीव प्राणों से वंचित हो जाता है।

महाकवि रङ्ग ने इन दसों अवस्थाओं में से धवल सेठ की निम्न अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण किया है

उण्हसासु वयणाउ पवट्टइ । किं इहु रोउ केणउ हट्टइ ।
मरणावच्छ एहु णिरु वट्टइ । जिम सर सुकइ मीणु पलोट्टइ ।
जलु तंबोलु ण गिन्हहि किंपि वि । गीउविणोउ ण रुच्चइ तं जिवि ।

सिरिवाल० 6/17/3-5

1. ...अगडदत्तकहागाथा संख्या 42-45

(18)

विश्वासघाती धवल सेठ जब अपने कपट-जाल द्वारा श्रीपाल को समुद्र में गिरा देता है और रयणमंजूषा के सतीत्व का अपहरण करना चाहता है तब उस समय रयणमंजूषा ने जो विलाप किया है, उसमें हृदय को द्रवित करने की पर्याप्त क्षमता है¹।

इस प्रकार महाकवि रङ्ग ने इस चरित-काव्य में काव्यत्व का समावेश करने हेतु मर्म-स्थलों की पूर्ण योजना की है। इसमें पौराणिकता तो केवल सृष्टि-निर्माण एवं प्रथम-सन्धि में भगवान महावीर की समोशरण-सभा तक ही सीमित रह जाती है। कवि ने जिस सन्धि से कथा का आरम्भ किया है, उस सन्धि से काव्य-शैली का पूर्ण प्रयोग किया है। वैदर्भी-शैली का स्वच्छ रूप और समासहीन सरल-पदावलि का प्रयोग इस काव्य की अपनी विशेषता है।

शैली की दृष्टि से एक बात और स्मरणीय है कि कवि ने पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कर अर्थबोध में क्लिष्टता उत्पन्न कर दी है। यथा **अमरकोश** के स्थान पर **सुरकोश**², आदि का प्रयोग।

सूक्तियों, कहावतों एवं विविध सद्गुणों की महिमा तथा दुर्गुणों की निन्दा आदि के वर्णनों की दृष्टि से भी यह रचना उत्कृष्ट है। कवि ने प्रसंग-प्राप्त अवसरों पर उनका समुचित प्रयोग किया है। ऐसे वर्णनों में सिद्धचक्रमाहात्म्य, नवकारमाहात्म्य³, पुण्य-माहात्म्य, सम्यक्त्व-माहात्म्य⁴, उपकार-महिमा, गन्धोदक-महिमा⁵, व्यापार-निन्दा⁶, लोभ-लालच निन्दा⁷, पर-स्त्री लम्पटी की निन्दा, कामीजनों की निन्दा⁸, आदि दृष्टव्य हैं। 'उपकार' को कवि ने मानव-शरीर का शृंगार कहा है। यथा

.....। उवयारें सोहइ णरसरीरु।।
जिह रयणें सोहइ कणयभव्वु। वेरागें सोहइ जेम भव्वु।।

1. सिरिवाल० 6/21-23
2. सिरिवाल० 1/13/16
3. सिरिवाल० 6/11; 7/1
4. सिरिवाल० 10/1
5. सिरिवाल० 4/9
6. सिरिवाल० 5/20
7. सिरिवाल० 5/17
8. सिरिवाल० 6/25

(19)

जिम दाणें सोहइ पउरदव्वु। जिम सीलें सोहइ लोउ सव्वु।।
खमभावें जिम सोहइ मुणिंदु। सपयावें जिम सोहइ दिणिंदु।।
जिम सोहइ सावउ वसन चत्तु। जिम सिस्सु जि सोहइ सगुरु भत्तु।।
जिम सोहइ तीय सलज्ज चित्त। जिम विहरकालि सोहति मित्त।।

वत्ता विउसु विवेयं जेम सोहइ लद्ध पमाणउ।
तिम उवयारें एच्छु सोहइ महियलि माणउ।। 5/10/5-12

‘पुण्य-महिमा’ कवि की दृष्टि से ‘मानव’ जीवन की समस्त ऋद्धियों-सिद्धियों का मूल कारण है। उसके बिना ऐहिक सुख-प्राप्ति सम्भव नहीं। कवि कहता है

पुण्णेण पवित्त जि पुत्त-मित्त। पुण्णें तिय लब्भहि कमलवत्त।।
पुण्णें णवणिहि संभवहि गेहि। पुण्णेण रोय णउ होंति देहि।।
पुण्णें हय-गय-बाहण हवन्ति। पुण्णें जसु हिंडइ पुणु णहन्ति।।
पुण्णें पाविज्जहि सयल भोय। पुण्णेण ण सुहयहं पुणु विओय।।
पुण्णें धण धणइ णिरु मणिट्ठ। पुण्णेण पुहमि पुणु जणगरिट्ठ।।
पुण्णें विज्जावलु पउरु होइ। पुण्णेण इच्छु वयरिय ण कोई।।
पुण्णें जणवल्लहरूववन्तु। पुण्णेण मुणइ जिण भणिउ संतु।।
6/15/1-7

‘सिद्धचक्र’ का माहात्म्य एवं उसके फल के विषय में कवि की विचारधारा निम्न प्रकार है

एयमि वारि जो सुद्धचित्तु। थिरजोयं आराहय विचित्तु।।
तहु दुइ कुइ-खय-जर-अणेय। णउ रोय होंति खयकालतेय।।
धण्ण-धण-कलत्त-सुपुत्त-मित्त। कुल-बल-जसेहि ण होंति चित्त।।
णारिहु दोहग्ग ण कहव्व होइ। ण वंजरूव ण गुत्त होई।।
किं बहुणा जीवहु विगय विग्घु। मणवंछिवच्छु अपय अणग्घु।।
4/5/1-5

पर-स्त्री लम्पटी पुरुष कवि की दृष्टि में कुल कलंकी हैं तथा संयम एवं शील रूपी सरोवर को सुखा डालने वाले हैं

(20)

वरकुललंछणु जण उवहसणउ । संजमसीलुसरोवरु सुसणउं ।। 6/18/3

मध्यकाल में विदेशों के साथ भारत के अच्छे सम्बन्ध थे। कई व्यापारिक वस्तुओं का आयात-निर्यात (Import-Export) होता था। विदेश-यात्रा का प्रमुख साधन समुद्री-पोत थे। महाकवि रङ्ग ने श्रीपाल की विदेश-यात्रा के बहाने यात्री के लिए अत्यावश्यक सामग्री, विदेशों में ध्यान देने योग्य बातों एवं समुद्री-यात्रा की कठिनाइयों आदि का सुन्दर वर्णन किया है।

धवल सेठ जब **समुद्री यात्रा** प्रारम्भ करता है तब उसके पूर्व वह अपने साथ चलने के लिए दस सहस्र सुभटों को निमन्त्रित करता है तथा ध्वजा, छत्र, लम्बे-लम्बे बाँस, बड़े-बड़े बर्तन, ईंधन, पानी, बारह-वर्ष तक के लिए सभी साथियों के लिए अनाज, विविध वाद्य, तिल-तेल, चन्दन, प्रभृति सामग्रियाँ तैयार करता है। यथा

..... । दह सहस्सइँ सुहड विणिरुड्डाणिया ।।
वाहण-धय-छत्तइँ णिरु सोहिया । उज्झियवंसहि सठपुणुरोहिया ।।
पंचसत्तखण मणसुह दायण । तेच्छु णिहिय पुणु णाणा भायण ।।
इंधणु पाणिउ पउरु जि सिंचिउ । बारहवरिसहु संवलु खंचिउ ।।
बज्जमाण णाणाबिह तूरहिं । जलजंतइ पुज्जिय दहि-कूरिहं ।।
चंदण वंदणेहि तिल-तेलहिं । जलदेविहु अच्चिवि सुहवेलाहिं ।।

5/13/1-6

इसी प्रकार जहाज में बैठते समय यात्री अपने शरीर को सम्भवतः भैरुंड-पक्षी के चर्म से आच्छादित करते थे, सिर पर लोहे की टोपी धारण करते थे तथा मुग्दर, बाँस के डंडे आदि हाथ में धारण करते थे। यथा

इय जंपिवि मोगगर पुणु पयंड । उच्चाइय उब्भिय वंस डंड ।।
मरजीयारुहिय खणेण सीस । ढारिय आयस टुप्परियसीस ।।
भैरुंड विहंगम मयण तेवि । णउ सुवहि रयण णिहापरेवि ।।

5/20/2-4

मध्यकालीन समुद्र-यात्रा में कई कठिनाइयाँ उपस्थित होती थीं। किन्तु सबसे अधिक कठिनाई समुद्री डाकुओं के आक्रमण से होती थी। समुद्री डाकू सामूहिक रूप में बड़ी भयंकरता के साथ आयुधास्त्रों से आक्रमण कर दिया करते थे। धवल सेठ अपने साथियों

(21)

के साथ गाता, नाचता एवं विविध मनोरंजन करता हुआ जब चला जा रहा था, उसका जहाज अनुकूल वायु के झकोरों से चला जा रहा था, तभी पीछे से भयंकर शब्द सुनाई दिए। लोग निर्णय नहीं कर सके कि जहाज पर किसी समुद्री जानवर ने आक्रमण किया है अथवा डाकुओं ने? कवि ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है

कइवय दिणेहिं पुणु हूव धीर । सुहु विलसहिं तहिं णिब्भयसरीर ॥
गावंति णडंति णियंति तोउ । पेच्छंति णिय जलयर विणोउ ॥
णउ रयणि ण वासरु रहहि पोय । णं कम्मं पेरिय पाव लोय ॥
पवणं चालिय वाहण चलंति । परसप्पर धयवड णंहिं मिलंति ॥
जा सुहिणो लंघहि ते समुद्दु । मरजीवउ ता जंपइ रउद्दु ॥
सजहु-सजहु तक्करहु बिंदु । तुम्हहं सम्मुहु आवइ सणिंदु ॥
तं णिसुणिवि भयपूरिय वणीस । केहिमि धारिय णिय करिणसीस ॥
केहिमि जंपिउ सव्वस्सु जाउ । णउ सहि सक्कमि हउं समरिघाउ ॥
केहिमि जंपिउ जलयर रउद्दि । भेजिज्जइ केच्छ महासमुद्दि ॥
परसप्पर इय जंपंति जाम । लुंटययणु णियडे पत्तु ताम ॥

5/21/1-10

अन्य वर्णन-प्रसंगों में महाकवि रङ्ग ने नायिका मैनासुन्दरी के सौन्दर्य का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपकालंकारों के माध्यम से कवि का यह वर्णन सजीव हो उठा है। यथा

पुण्णिमासी अद्धउ भालवट्टु । णं काम-णरेसहु विजयपट्टु ॥
वंकत्तणु भू-जुयलहु अखंडु । णिग्गुणु विधणुहु णं कज्जचंडु ॥
सोहंति सवणजुव कुंडलेहि । रविससिणिद्धाडिय णियकरेहि ॥
अग्गपएसि पुणु तिक्खणास । णउ लक्खिज्जइ णिग्गंत सास ॥
कणंति सहंति कडक्खवाण । णं कामहु ते मेलंति साण ॥
भुय जुयलु सुकोमलु पियपयासु । णं पयडु सुमहियलि कामपासु ॥
उररुहउ णय ससिपह णिसुंभ । णं मयणहु थिय अहिसेय कुंभ ॥
हरिलंकसमाणी मज्झि खीण । तिवली-तरंग पुणु तच्छलीणु ॥
अइ पिहुलणियंवु जि तहि अलीदु । णं रइसुहिकारणि णिहिउ पीदु ॥
उरु जुयलउ णयणाहिरामु । णं जणमणबंधण थंभ जुम्मु ॥

(22)

दिढ संधिबंध जाणुखण्ण। जंघाजुव पुणु विच्छर सछण्ण।।
रत्तुप्पल दल सारिच्छ पाय। णिम्मल णह पह जियइउमणि छाय।।

2/13/4-15

श्रीपाल जब समुद्र पार कर कुंकुमद्वीप पहुँचता है और वहाँ के राजा को अपने सद्गुणों से प्रभावित करता है, तब वह प्रसन्न होकर उसके साथ अपनी कन्या गुणमाला का विवाह कर उसे अपने दरबार में सम्मान देता है। संयोगवश पापी धवल सेठ भी घूमते-घामते उसी दरबार में आता है और जब श्रीपाल को देखता है तो स्तब्ध रह जाता है। वह सोचने लगता है कि यदि श्रीपाल उसे समुद्र में ढकेलने सम्बन्धी शिकायत राजा से कर देगा तो निश्चय ही उसे मृत्यु-दंड मिलेगा। अतः अपने मंत्री की सलाह से मातंग नामक एक भाँड़ का मुँहमाँगा पारितोषिक देकर उसे राज-दरबार में ही श्रीपाल को अपना सजातीय बंधु घोषित कराने का षड्यंत्र रचता है। भाँड़-मण्डली भी षड्यंत्र के अनुसार ही दरबार में पहुँचती है तथा गीत-नृत्य वंसारोहण आदि के द्वारा राजा का मनोरंजन करके तथा उपहार आदि लेने के बाद श्रीपाल को वे गले लगाकर रोने लगते हैं। दरबार में एक विचित्र वातावरण उत्पन्न हो जाता है। कवि ने उसका चित्रण निम्न प्रकार किया है

कोउहलु बहुविह दंसियउ। वंसारोहणु पुणु ववसियउ।।
कंसाल-ताल बहु बज्जियाइँ। सुर-नर-खेयर-मण रंजियाइँ।।
तं पेक्खिवि राणउ बिंभियाउ। पेरण करणइँ जि पउंजियाइँ।।
राएण पसायं अंकियाइँ। वरवच्छाहरणइँ लंकियाइँ।।
णिउ तुट्टउ पेक्खिवि वीरु पुणु। तंबोलु समप्पइ जासु मणु।।
तक्खणिणा सयल णाडउ मुएवि। धाविय ते हा-हा-सरु मुएवि।।
सिरिपालु तेहिं अंकिउ धरिउ। कंठालिंगणु केणवि भरिउ।।
किवि चरण धरहिं किवि करि गहहिं। किवि मोहे खणु मुछिवि रहहिं।।
किवि पुछहिं पेछहिं गंतु तुहुँ। किवि धाह पमेल्लिहि गरुयलहु।।
किवि रायहु संसहि पुणु वि पुणु। तब वंसु पवड्डउ लद्धु गुणु।।

क्ता कुवि तिय सिरु चुंबिवि मोहु वि मुंजवि जंपइ बहु दिण विच्छुलितउ।।
इहु वासरु धण्णउ सुहसयपुण्णउ जेम मज्झु सुउ महु मिलउ।।

7/10/1-12

(23)

राजनीति के क्षेत्र में दूत का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। **‘नीतिवाक्यामृत’** में आचार्य सोमदेव ने निसृष्टार्थ, परिमितार्थ एवं शासनहर नामक तीन दूतों की चर्चा की है। कवि रङ्ग ने उनमें से परिमितार्थ एवं शासनहर नामक दूतों के कार्योल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ में किए हैं। मध्यकाल में निसृष्टार्थ-दूत की कल्पना करना कठिन था, क्योंकि जिसके द्वारा निश्चित किए हुए सन्धि-विग्रह को उसका स्वामी प्रमाण मानता है वही निसृष्टार्थ कहलाता था, जैसे पाण्डवों के श्रीकृष्ण। उसकी संभावना इस समय नहीं रही थी। हाँ, राजा द्वारा भेजे गए सन्देश एवं शासन-लेख को जैसे का तैसा शत्रु के पास कहने या देने वाले परिमितार्थ व शासनहर नामक राजदूतों की चर्चाएँ प्रचुर रूप में अवश्य मिलती हैं।¹

श्रीपाल जब **अंगदेश** पहुँचकर वहाँ के राजा को अपने वश में करने के लिए आक्रमण करने का विचार करता है तब उसका मंत्री उसे सलाह देता है कि एकाएक आक्रमण करना उपयुक्त नहीं होता। सर्वप्रथम दूत के हाथ सन्देश भेजना चाहिए और जब वह असफल हो जाय तभी विग्रह करना चाहिए। यथा

पहिलउ पेसहि दूउ निरुत्तउ। ताय सरिसु सो तुम्ह पउत्तउ।।
जइ सो तुम्हहँ आयरें माणाइ। णेहु करिवि णियरज्जहो ठाणइ।।
ता णरेस णउ विग्गहु किज्जइ। णं तो संगामेण दलिज्जइ।।

9/3/7-9

मनोरंजन के साधनों में कवि ने वाद्य, गीत आदि के उल्लेख किए हैं किन्तु प्रसंगवश जिन नवीन बातों की चर्चा कवि ने की है; वे हैं **चित्रलेख-नृत्य** एवं **चंचुपुट-ताल**। कुंडलपुर का राजा श्रीपाल के गुणों पर आकर्षित होकर उसे अपनी कन्या देना चाहता है। श्रीपाल के राजदरबार में पहुँचते ही राजकुमारी उसे **चंचुपुट-ताल** पर **चित्रलेख-नृत्य** प्रदर्शित करती है। यथा

सिरिपालें ता पडहु विवज्जिउ। चित्तलेहणच्चु जि समप्पिउ।
चंचुपुटतालु जि तेणोद्धरिउ। ताहि मणु खणमत्तें हरियउ।।

8/3/12-13

सामाजिक रीति-रिवाजों की की चर्चाएँ भी कवि ने प्रचुर रूप से की हैं। पुत्रजन्म, विवाह,

1. स त्रिविधो निसृष्टार्थः परिमितार्थः शासनहरश्चेति।

नीतिवाक्यामृत 13/3 (दिल्ली, 1950)।।

(24)

बेटी की बिदा आदि के वर्णन-प्रसंग प्रस्तुत रचना में प्रस्तुत हैं। दहेज की प्रथा मध्यकाल में विशेष रूप से रही है। कवि के उल्लेख से विदित होता है कि पिता अपनी पुत्री के विवाह में दहेज स्वरूप हाथी, घोड़े, दासी, दास, सोना, चाँदी आदि श्रेष्ठ वस्तुएँ प्रदान किया करते थे।

आभूषणों में कवि ने मणिजटित शेखर, कुंडल, कंकण, मुद्रिका आदि का उल्लेख किया है। श्रीपाल ने दीक्षा लेते समय अपने महार्थ्य वस्त्रों के साथ निम्न आभूषणों को उतार फेंका था

**पुणु सेहरु मणिबद्धुत्तारिउ । णं कामहु अहिमाणु णिवारिउ ।।
कुंडल-कंकणाइ पुणु मुक्कइ । णं णखत्त सहहि णह चुक्कइ ।।
मुद्दयाइँ उत्तारिवि इच्छहु । आसिय मुद्दा तेण णिग्गंथहु ।।**

10/16/6-8

विषय वर्णन के प्रसंगों में कवि ने सूक्तियों, कहावतों एवं बहुमूल्य उपदेशों का अंकन भी किया है, जो बड़े मार्मिक हैं। उदाहरणार्थ कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं

सहसा अवियारउ किंपि कम्मु । किज्जइ ण कहिज्जइ कासु मम्मु ।। 3/10/1

अर्थात् सहसा ही अविचारित कोई कार्य न करना चाहिए और न किसी को उसका मर्म कहना चाहिए।

किं अमयवेलि घल्लहि हुयासि । तुसमोलें विक्किय रयणरासि ।। 3/10/1

अर्थात् अमृतलता को अग्नि ज्वाला में क्यों झोंक रहा है? भूसे के मोल रत्नराशियाँ क्यों बेच रहा है?

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान, विज्ञान एवं मनोविज्ञान के विश्वकोश के समान उक्त अतिमहत्त्वपूर्ण दुर्लभ पाण्डुलिपि अद्यावधि अप्रकाशित है और उसके लिए प्रकाशक की व्यग्र प्रतीक्षा है।

1. सिरिवाल० 6/12, 7/5

2/8/2010

बी-5/40-सी, सेक्टर-34

धवलगिरी, नोएडा-201301 (यू०पी०)